

# गीता और महर्षि दयानन्द जी



लेखक

अमर स्वामी सरस्वती

(आर्य जगत के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी)

प्रकाशक

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग-गाजियाबाद

वेद

रामायण

महाभारत

गीता

वैदिक साहित्य pdf मे प्राप्त करने के लिए  
टेलीग्राम एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय या  
**@Vaidicbooks** सर्च करें



@vaidicbooks

Aryapdfbooks

@vaidicbooks

गीता और महर्षि दयानन्द जी



लेखक

अमर स्वामी सरस्वती

सम्पादक

लाजपत राय अग्रवाल  
(वैदिक मिशनरी)

प्रकाशक

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००९ (उ०प्र०)

E-mail : lraggarwal1058@gmail.com

Website: www.amarswamiprakashanvibhag.com

तृतीय आवृत्ति : अप्रैल सन् २०१० ई० मूल्य : पन्द्रह रुपये

© : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग



- लेखक : अमर स्वामी सरस्वती
- प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग  
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१  
(उत्तर प्रदेश) भारत
- दूरभाष : (०१२०) २७०१०६५ चलभाष : ०६६१०३३६७१५
- शब्द संयोजक : आर्य कम्प्यूटर्स, गाजियाबाद  
भ्रमण ध्वनि क्रमांक : ०६६६८५१४६५२
- मुद्रक : स्वास्तिक ऑफसेट प्रिंटिंग प्रैस, गाजियाबाद
- मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र
- सम्पादक : लाजपत राय अग्रवाल (वैदिक मिशनरी)  
भ्रमण ध्वनि क्रमांक : ०६६१०३३६७१५

नोट : भारत भर में हमारे सभी वितरकों के पास उपलब्ध

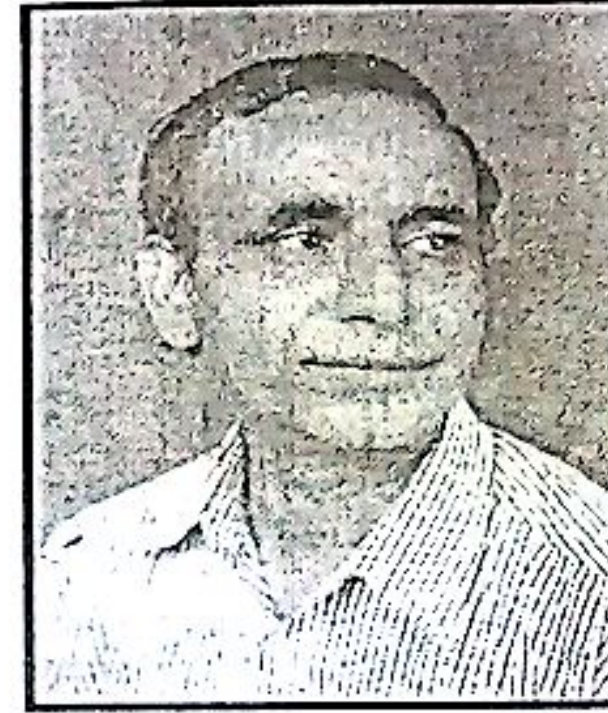
### Geeta aur Mahrishi Dayanand

Published by : Lajpat rai Aggarwal (Vedic Missionery)  
Amar Swami Prakashan Vibhag  
1058, Vivekanand Nagar, Ghaziabad-201001 (U.P.)  
India

III Edition, April 2010

Price : Rs. 15/-

## सम्पादकीय



लाजपत राय अग्रवाल  
(वैदिक मिशनरी)

प्रस्तुत पुस्तक छोटी होते हुए भी बहुत ही महत्वपूर्ण एवं खोज की है, गीता पर विद्वानों में बहुत ही मतभेद हैं, जबकि ऐसा माना जाता है कि बाइबिल के बाद केवल गीता ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका सबसे अधिक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

वर्तमान में सात श्लोकों से लेकर सात सौ श्लोकों तक की गीता सुनने में आती हैं, सात, सत्तरह, सत्तर, और सात सौ श्लोकों वाली यह सभी गीता हमारे संग्रहालय में मौजूद भी हैं, जिनमें से सत्तर श्लोकों वाली गीता का प्रकाशन तो हमारे द्वारा हुआ भी है।

आर्य समाज के उद्भट विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी श्री अमर स्वामी जी महाराज गीता के बड़े पोषक व भक्त थे, वह गीता की कथा भी प्रायः कहा करते थे जिसे श्रोतागण बड़े ही मनोयोग से सुनते थे।

प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने पर यह पता चलता है कि

महर्षि दयानन्द जी भी गीता के परम अनुयायी थे तथा उन्होंने भी जीवन भर गीता को प्रमाण मानते हुए उसका प्रचार व प्रसार किया।

गीता पर अनेकों विद्वानों की टीकाएं अनेकों भाषाओं में मौजूद हैं। फिर गीता के सम्बन्ध में ये विरोधाभास कहाँ से पैदा हो गया?

आचार्य डा० श्रीराम आर्य कृत—“गीता पर ४२ प्रश्न” एवं “गीता विवेचन” नामक ग्रन्थ पढ़ने पर कुछ और ही तथ्य सामने आते हैं।

अमर स्वामी जी महाराज कृत पुस्तक ( १ ) गीता और वेद, ( २ ) गीता में ईश्वर का स्वरूप, ( ३ ) प्रस्तुत पुस्तक गीता और महर्षि दयानन्द जी, ( ४ ) कुछ अध्यायों का गीता भाष्य, ( ५ ) गीता और अवतारवाद आदि पुस्तकें पढ़ने पर कुछ और ही स्थिति सामने आती है

यह निर्णय पाठकों पर ही छोड़ा जाता है, वह स्वयं इन पुस्तकों को पढ़ कर निर्णय करें, मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ। हाँ! यह निश्चय है कि जो लाभ गीता के उपदेशों द्वारा संसार भर में जनसामान्य के अन्दर हुआ है वह अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं हुआ।

किमधिकम् लेखेन्.....

वैदिक धर्म का—

लाजपत राय अग्रवाल

( वैदिक मिशनरी )

## गीता और महर्षि दयानन्द जी

आर्य समाज के प्रायः सभी विद्वान् गीता का सम्मान करते और गीता को मानते रहे हैं और मानते हैं। अब आर्य समाज में दो तीन सज्जन गीता के घोर विरोधी हैं। उनकी दृष्टि में गीता से अधिक हानिकारक और बुरा ग्रन्थ दूसरा कोई भी नहीं है।

वह तो तीन सज्जन गीता को न मानें, सबसे बुरा ग्रन्थ कहें, उसको मीठा विष बतायें, ऐसा मानने और कहने में वह स्वतन्त्र हैं, पर ऋषि दयानन्द जी गीता को ‘त्रिदोष का सन्निपात’ या ‘कल की राण्ड’ कहते थे, ऐसा लिखना और कहना उचित नहीं है क्योंकि—महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थ में गीता के प्रमाण दिये हैं, वह अपने व्याख्यानों में गीता के श्लोकों का प्रयोग करते रहे, उनके जीवन चरित्रों के पढ़ने से पता लगता है कि—वह गीता की कथा भी करते थे और सारी आयु भर गीता के श्लोकों पर उठने वाली शंकाओं का समाधान भी करते रहे।

ऋषि के पत्र व्यवहार के पढ़ने से भी पता लगता है

कि-ऋषि ने अपनी मृत्यु से कुछ मास पूर्व तक अपने पत्रों में गीता के श्लोकों का प्रयोग किया है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने जीवन में गीता के श्लोकों का प्रयोग कहाँ-कहाँ और किस-किस प्रकार किया है यह बताने के लिए ही यह छोटी-सी पुस्तिका लिखी गई है, इसमें दिये गये प्रमाणों को पढ़ें और निष्पक्षता के साथ विचार करें।

१-श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय जी के बनाये और सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रचारित-ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र प्रथम भाग पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि-

आगरा में.....सुन्दर लाल जी ने ऋषि दयानन्द जी से अष्टाध्यायी और गीता पढ़नी आरम्भ की।

२-इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ७० पर लिखा है कि-

“कभी-कभी स्वामी जी भगवद्गीता की व्याख्या करने लगते थे। उनकी व्याख्या ऐसी अपूर्व और सरल होती थी कि-उसे पण्डित से लेकर साधारण मजदूर तक सभी समझ जाते थे।

३-इसी ग्रन्थ में पृष्ठ ७० के नीचे टिप्पणी में लिखा है कि-

दयानन्द ने भगवद् गीता की कथा भी की थी,

जिसमें एक मास से अधिक लगा था।

४-स्वामी सत्यानन्द जी कृत 'दयानन्द प्रकाश' के पृष्ठ ७१ पर भी यह वृत्त लिखा हुआ है।

५-“ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र” पृष्ठ ७१ की टिप्पणी में लिखा है कि-

एक दिन स्वामी कैलाश पर्वत ने गीता के श्लोक- 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' की व्याख्या की परन्तु उनके अर्थों से श्रोताओं की तृप्ति नहीं हुई तो लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि-आप भी इस श्लोक का अर्थ समझाने की कृपा करें। इस पर उन्होंने उसके ऐसे सुन्दर अर्थ किये कि-सब लोग चकित हो गये और कैलाश पर्वत जी ने कहा कि इन (दयानन्द जी) की विद्या बहुत अच्छी है। उस समय स्वामी जी भागवत् का खण्डन करते थे और महाभारत विचारा करते थे।

६-इसी जीवन चरित्र के पृष्ठ ७२ की टिप्पणी में लिखा है कि-

“एक दिन कुछ लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि-आप कोई ग्रन्थ बांचे जो काल व्यतीत हो और हम लोगों का भी लाभ हो। उन्होंने विद्यारण्य स्वामी कृत पंचदशी बांचने को कहा महाराज ने इसे स्वीकार

कर लिया। बांचते-बांचते उसमें क्या आया कि कभी-कभी ईश्वर को भी भ्रम हो जाया करता है। इस पर स्वामी जी ने कहा कि—यह मनुष्य कृत ग्रन्थ है, और फिर उसे नहीं बांचा, हाँ! “गीता की कथा करते रहे, यह कथा आश्विन मास से दिवाली के एक मास पश्चात् तक हुई” लगभग दो मास तक। यह वृत्त श्री महाराज के आगरा निवास का है जो वैशाख सम्वत् १९२० विक्रमी से आश्विन सम्वत् १९२१ विक्रमी अक्टूबर सन् १९६४ ई. तक लगभग १९ मास का हुआ।

७-महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग १ पृष्ठ ७९ में जयपुर वास सम्वत् १९२३ विक्रमी के वृत्त में बताया है कि—

“अचरोल के ठाकुर रणजीत सिंह जी के बड़े पुत्र लक्ष्मण सिंह जी को” स्वामी जी ने भगवद्गीता पढ़ाई थी।

इसी जीवन चरित्र के भाग १ पृष्ठ ८३ पर लिखा है कि—

स्वामी जी ने अचरोल के ठाकुर को गायत्री का उपदेश दिया, उनके लिये दशोपनिषद् बम्बई से मंगवाये गये थे। ठाकुर साहब ने उनके उपदेश से मूर्ति पूजा छोड़ दी थी।

जयपुर के ही प्रसंग में पृष्ठ ८४ पर लिखा है कि—

इस समय भी निर्भर उसका केवल वेद पर ही था और लोगों को संध्या व गायत्री ही का उपदेश देते थे।

यह सब यहाँ इसलिये बताया है कि—

एक गीता विरोधी सज्जन ने यहाँ तक के गीता सम्बन्धी प्रसंगों पर यह कह दिया था कि—स्वामी जी उस समय पौराणिक ही थे मूर्ति पूजा आदि मानते और विष्णु सहस्रनाम आदि को भी पढ़ते थे, आपने देखा कि—ऊपर के उदाहरणों से उनके पौराणिक होने और मूर्ति पूजा, आदि मानने का खण्डन हो गया है।

८-चासी जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश) में ऋषि दयानन्द जी ने सम्वत् १९२४ विक्रमी में निवास किया इस प्रसंग में इसी जीवन चरित्र के भाग १ पृष्ठ १०८ पर लिखा है कि—

चांदोख जिला बुलन्दशहर निवासी ठाकुर महावीर सिंह जी श्री दर्शनों को जाया करते थे और महाराज से धर्म विषय पर बातचीत किया करते थे।

यहीं पर लिखा है कि—

स्वामी जी ने ठाकुर महावीर सिंह जी को ‘भगवद्गीता’ का पाठ करने को कहा था। इस पर

स्वामी जी जीव और ब्रह्म का पृथक्त्व मानते थे। पुराणों की जगह ब्राह्मण ग्रन्थ पढ़ने को कहते थे।

मेरे ऊपर छल प्रयोग का आरोप लगाते हुए एक सज्जन ने मेरे विषय में यह लिखा है कि—

गीता के पक्ष पोषण में अचरोल के ठाकुर रणजीत सिंह और चांदोख के ठाकुर महावीर सिंह के उद्धरणों के कुछ भाग छपा कर छल प्रयोग कर बैठे हैं।

इस विषय में वास्तविकता यह है कि—

मेरे उद्धरण देने के ढंग में छल का नामो निशान भी नहीं है। प्रमाण देने का ढंग ठीक यही है कि—प्रमाण का जितना भाग प्रस्तुत विषय से सम्बन्ध रखता है उतना ही उद्धृत किया जाय, अनावश्यक को भी लिख कर लेख का कलेवर व्यर्थ न बढ़ाया जाय। ऐसा जो भी करते हैं वह ठीक ही करते हैं, ऐसा ही मैंने भी किया है।

जिन सज्जन ने मुझ पर छल प्रयोग का मिथ्या दोषारोपण किया था, उन्होंने ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग १ के पृष्ठ २०४ से यह उद्धरण अपने लेखों में बार-बार दिया वह इस प्रकार है—

स्वामी जी भगवद्गीता को 'त्रिदोष का सन्निपात' बतलाते थे और कहते थे कि—उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म

का एकत्व प्रतिपादित किया गया है और कहीं उनका पृथक्त्व देखने में आता है और कहीं प्रकृत और पुरुष का पृथक्त्व माना गया है।" (यह भाषा भी) अद्भुत ही है।

इसके नीचे ही एक पंक्ति मनुस्मृति के विषय में भी है, उसको श्रीमान जी ने नहीं लिखा, वह इस प्रकार है—

“प्रचलित मनुस्मृति को वह (स्वामी जी) मनु संहिता नहीं मानते थे और उसे भृंगु संहिता कहते थे।”

इसको उन्होंने छोड़ दिया, तो मैं उन पर छल प्रयोग का दोष नहीं लगाता हूँ।

उन श्रीमान जी का कहना यह है कि यहां तक जो ऋषि के गीता पढ़ने सम्बन्धी प्रमाण दिये हैं उनके साथ यह भी तो लिखा है कि—पंचदशी आदि भी उस समय पढ़ते थे। ठीक है पढ़ते थे पर पंचदशी उसी समय छोड़ दी और गीता अन्त तक नहीं छोड़ी, इसके प्रमाण आगे-आगे आते जायेंगे।

१-महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग १ पृष्ठ १०९ में लिखा है कि—

“रामघाट में स्वामी कृष्णानन्द के साथ श्री महाराज का शास्त्रार्थ हुआ, स्वामी कृष्णानन्द ने ईश्वरावतार

सिद्ध करने के लिए—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि भवति भारत।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

( गीता अध्याय ४ श्लोक ८ )

यह गीता का श्लोक बोला। श्री महाराज ने उत्तर में कहा—

ईश्वर निराकार है वह देह धारण नहीं करता है यह ( देह धारण करना ) तो जीव का धर्म है।

१०—इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १२५ पर लिखा है कि—

कर्णवास में—शरत् पूर्णिमा के अवसर पर राव कर्णसिंह के भेजे हुए तीन गुण्डों ने—स्वामी जी पर रात्री के दो बजे घातक आक्रमण करना चाहा, स्वामी जी जाग पड़े और ( स्वामी जी ने ) हुँकार मारी, गुण्डे भाग गये। ऋषि के पास सोने वाले अंगरक्षक ने कहा—आप कहीं दूसरी जगह चले जाइये। ऋषि ने उत्तर में गीता का श्लोक पढ़ा—

नैनं छिन्दन्ति शत्राणि, नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्ते दयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

( गीता-श्लोक )

और कहा कि—मुझको कोई नहीं मार सकता है।

११. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३३ पर लिखा है कि—

गंगाराम शास्त्री बरतिया वाले बड़ी डींगें हांका करते थे कि—हम स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे। स्वामी जी ने उन्हें कहला भेजा कि वह गीता के इस श्लोक का अर्थ हमारे सम्मुख कर दें तो हम परास्त हो जायेंगे।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि, सर्व क्षेत्रेषु भारत।  
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतिर्मम॥

( गीता अध्याय १३ श्लोक २ )

शास्त्री जी ने इसका कुछ अर्थ किया, परन्तु स्वामी जी ने उस अर्थ पर कटाक्ष किये कि—उन्हें उत्तर न आया।

गीता के अर्थों को समझने वाले समझ सकते हैं कि—ऋषि दयानन्द जी ने यहाँ 'उभयपाशारज्जु' का प्रयोग किया था उनका अभिप्राय यह था कि—यदि गंगाराम शास्त्री इस श्लोक का सत्य अर्थ करेंगे तो श्रीकृष्ण जी जीव सिद्ध हो जायेंगे क्योंकि—क्षेत्रज्ञ का अर्थ जीवात्मा है और श्रीकृष्ण जी ने अपने आपको जीव मानकर ही स्वयं को 'क्षेत्रज्ञ' कहा है।



यदि वह क्षेत्रज्ञ का अर्थ ईश्वर करेंगे (जैसा कि श्रीकृष्ण को ईश्वर मानने वाले करते हैं) तो गीता से ही उसका खण्डन कर दिया जायेगा, क्योंकि—इससे पहले ही श्लोक में कहा जा चुका है कि—

इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

(गीता अध्याय १३ श्लोक ९)

हे अर्जुन! इस शरीर को क्षेत्र कहा गया है, इसको जो जानता है उसको उसके जानने वाले लोग 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं। यहाँ ब्रह्माण्डों के ब्रह्माण्ड को क्षेत्र नहीं कहा गया है, शरीर के जानने वाले को क्षेत्रज्ञ कहा गया है, ब्रह्माण्डों या ब्रह्माण्ड के जानने वाले को क्षेत्रज्ञ नहीं कहा है, गंगाराम शास्त्री ने अवतार मानने वालों का श्रीकृष्ण जी को ईश्वर बताने वाला अर्थ किया होगा और ऋषि ने इसी श्लोक से उस अर्थ की धज्जियां उड़ा दी।

१२. इसी ग्रन्थ के इसी भाग में पृष्ठ १९१ पर सम्बत् १९२७ विक्रमी में मिर्जापुर की एक घटना लिखी है कि—

एक दिन एक सज्जन जो गीता का बड़ा प्रेमी

था—स्वामी जी के पास आकर बोला कि—महाराज! मैंने गीता की अनेक टीकायें देखी हैं परन्तु इस श्लोकार्थ का अर्थ समझ में नहीं आया, आप अनुग्रह करके समझा दें।

“सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।”

स्वामीजी ने इसका अर्थ किया कि—‘धर्मान्’ शब्द को यहाँ ‘अधर्मान्’ समझना चाहिए। ‘शकन्धवादिषु पररूप वाच्यम्।’ इस व्याकरण नियम के अनुसार ‘सर्व’ के वकार में जो अकार है वह ‘सर्व अधर्मान्’ था सो ‘सर्वधर्मान्’ हो गया। इस प्रकार यद्यपि ‘अधर्मान्’ शब्द ने ‘धर्मान्’ का रूप धारण कर लिया परन्तु वास्तव में वह ‘अधर्मान्’ ही रहा। यह अर्थ सुनकर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ और स्वामी जी से उसने इस अर्थ की पुष्टि में जब प्रमाण मांगे तो उन्होंने वेद के दो-तीन मन्त्रों का प्रमाण देकर उसका सन्तोष कर दिया।

यहाँ स्वामी जी गीता को ‘त्रिदोष का सन्निपात’ बता देते या कड़क कर कह देते कि—‘गीता कल की राण्ड है’, इसके विषय में हमसे कुछ न पूछो। यदि गीता को नहीं मानते थे तो वे इतने समाधानों के झगड़े

में क्यों पड़े? और क्यों उसके अर्थ समझाने में इतना परिश्रम करते रहे? यह बात गीता विरोधियों की समझ में नहीं आ सकती।

१३. इसी ग्रन्थ के भाग २ पृष्ठ २३१ पर है सम्बत् १९३७ विक्रमी में महाराज काशी में विराजमान थे। उस प्रसंग में लिखा है कि—

एक दिन एक नवीन वेदान्ती पण्डित का महाराज से वार्तालाप हो रहा था, उसमें गीता का श्लोक—

ईश्वरः सर्व भूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।  
भ्रामयन् सर्व भूतानि, यंत्रारूढानि मायया॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ६१)

पढ़ कर कहा कि—देखो जो कुछ करता है वह ईश्वर ही करता है। जीव कुछ नहीं करता, महाराज ने कहा कि इसका यह अर्थ है कि—ईश्वर पृथ्वी आदि सब भूतों को घुमा रहा है, तुम व्यर्थ ही सब दोष ईश्वर के मत्थे मढ़ना चाहते हो। यह सुनकर पण्डित तथा अन्य पण्डित जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, चकित हो गये और सबने महाराज के अर्थों की सत्यता स्वीकार की।

गीता का यही श्लोक और उसका यही पौराणिकों

वाला अर्थ लेकर ही हमारे एक विद्वान ने गीता को वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध सिद्ध करने का यत्न किया था। उन्होंने ऋषि दयानन्द जी महाराज के किए इस अर्थ को न पढ़ा और न ही सुना, यदि वह इसको पढ़ या सुन लेते तो वह भी चकित हो जाते और महाराज के अर्थ को स्वीकार करते।

बाबू देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय तथा बाबू घासी राम जी एम०ए० द्वारा लिखे गये ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र से इतने प्रमाण दिये गये।

१४. श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखे गये 'दयानन्द प्रकाश' ग्रन्थ के पृष्ठ ७९ पर जयपुर के निकट अचरोल में महाराज के निवास का वर्णन है, यहाँ लिखा है कि—

स्वामी जी मनुस्मृति, उपनिषद् और गीता आदि ग्रन्थों के प्रकरण सुनाकर कृतार्थ किया करते थे।

१५. इसी पृष्ठ पर और लिखा है कि—

स्वामी जी महाराज चार मास के लगभग वहाँ (अचरोल में) टिके। नित्य प्रति उपनिषदों और गीता की कथा सुनाया करते थे, प्रतिभा पूजन का खण्डन करते थे, और कहते थे कि ध्यान भीतर करना चाहिए।

दयानन्द प्रकाश पृष्ठ ९९ पर लिखा है कि—

एक दिन सन्त अमीर सिंह निर्मल ने चित्सुखी की एक पंक्ति स्वामी जी से पूछी। स्वामी जी ने उसे उत्तर देते हुए कहा कि—आपके लिए मैं इसका अर्थ कर देता हूँ। परन्तु वह अनार्ष ग्रन्थ है। इसे प्रमाण कोटि में नहीं मानना चाहिये।

ऐसे वाक्य महाराज ने गीता के लिए कही भी नहीं कहे।

१६. भगवद्गीता प्रक्षिप्त नहीं हैं—

इस समय के दो तीन पण्डितमन्य अपना सारा बल यह सिद्ध करने में ही लगा रहे हैं कि गीता-सारी की सारी प्रक्षिप्त है।

वह लोग अपने आपको सारे आर्य समाजी पण्डितों से ही नहीं ऋषि दयानन्द जी से भी बड़ा समझदार प्रकट करना चाहते हैं।

देखिये दयानन्द प्रकाश पृष्ठ २०६ पर लिखा है—

मिर्जापुर में बाल कृष्ण दास नामक एक वैरागी महन्त रहता था। वह महाभारत के संशोधन में लगा हुआ था। वास्तव में तो वह महाभारत के २४ सहस्र श्लोक रखना चाहता था। परन्तु उस समय उसने जो पुस्तक छपवाई थी उसमें ३० सहस्र ही श्लोक थे। उसने

भगवद्गीता को भी प्रक्षिप्त समझ कर निकाल दिया था।

सुगन्धी लाल नामक एक धनिक व्यक्ति गीता का बड़ा भक्त था। वह वैरागी बाबा की इस अनाधिकार चेष्टा से बहुत ही चिड़ गया। उसने बाबा जी के इस अनर्थ की दुहाई स्वामी दयानन्द जी के आगे आकर दी। “महाराज ने कहा—उसका गीता को प्रक्षिप्त कहना सत्य नहीं है। इस पर जब उसका जी चाहे शास्त्रार्थ कर ले।”

उक्त बाबा जी ने गीता के प्रक्षिप्त होने पर शास्त्रार्थ नहीं किया छोटू राम नामक एक व्यक्ति स्वामी जी से उपनिषद् पढ़ने आया करता था। छोटू नाम ने बाबा जी को स्वामी जी की सम्मति सुना दी। इससे बाबा जी रुष्ट तो बहुत हुए। परन्तु शास्त्रार्थ को यह कहकर टालते रहे कि—हम दूसरे के स्थान पर नहीं जाया करते। स्वामी जी ने उन्हें बहुतेरा कहलाया कि यह स्थान भी हमारा नहीं है। यहाँ नहीं आ सकते तो पास के उद्यान में आ जाइये। अथवा गंगा के किनारे पर बैठ कर विचार कर लीजिए। परन्तु बाबा जी ने एक न मानी।

गीता प्रक्षिप्त नहीं—

इसी शीर्षक से यह वृत्त—श्री पण्डित हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती नामक सचित्र प्रामाणिक जीवन चरित्र के पृष्ठ ११५ पर भी अंकित है।

संख्या १० में लिखा वृत्त भी इस पुस्तक के पृष्ठ संख्या ७५ पर विस्तार के साथ राव कर्णसिंह के द्वारा भेजे गये गुण्डों के आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है, वहाँ स्वामी जी के अंगरक्षक का नाम 'कैथल सिंह' लिखा है।

संख्या १२ का वृत्त इस ग्रन्थ में पृष्ठ १४४ पर अंकित है जिसमें 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' का समाधान है।

१७. दयानन्द प्रकाश पृष्ठ १२२-१२३ पर डुमरांव में वहाँ के महाअभिमानी शैव पण्डित दुर्गादत्त से वार्तालाप का वृत्त लिखा है। वहाँ बताया गया है कि—

ऋषि दयानन्द जी और पण्डित दुर्गादत्त में गीता के श्लोक 'सर्व धर्मान् परित्यज्य' पर भी विचार विनिमय हुआ था।

१८. गीता को ऋषि ने 'शास्त्र' कहा—

देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय कृत—महर्षि दयानन्द

का जीवन चरित्र भाग १ पृष्ठ १४५ पर ऋषि के कन्नौज निवास का वर्णन है, वहाँ लिखा है कि—

बलिवैश्व देव यज्ञ के विषय में स्वामी जी ने कहा कि जो बलिवैश्व देव यज्ञ किये बिना भोजन करते हैं यह मानो गो-मांस भक्षण करते हैं।

पण्डित हरि शंकर जी ने कहा कि—ऐसा न कहो, यहाँ तो कोई भी बलिवैश्व देव यज्ञ नहीं करता है। स्वामी जी ने कहा कि—मैं थोड़ा कहता हूँ शास्त्र में तो इससे भी अधिक लिखा है, और गीता का श्लोक पढ़ा—

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।

भुञ्जन्ते ते त्वघं पापा, ये पचन्त्यात्म कारणात्॥

(गीता अध्याय ३ श्लोक १३)

अर्थात् वह पापी लोग पाप का ही भक्षण करते हैं जो यज्ञ किये बिना अपने ही लिए पकाते और आप ही खाते हैं।

१९. "संस्कार विधि और सत्यार्थ प्रकाश में गीता के प्रमाण—"

संस्कार विधि में गीता के केवल दो श्लोकों का प्रयोग हुआ है गृहस्थाश्रम प्रकरण में वर्ण व्यवस्था का

भी वर्णन है वहां ब्राह्मण के लक्षणों में पहले मनुस्मृति का श्लोक—

“अध्यापनमध्ययनम्...”—आदि देकर नीचे गीता का—

शमोदमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जवमेव च।  
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य, ब्राह्म कर्म स्वभावजम्॥  
(गीता अध्याय १८ श्लोक ४२)

यह श्लोक दिया है। आगे क्षत्रिय के गुण कर्म स्वभाव बताते हुए—पहले मनुस्मृति का उपरोक्त श्लोक अध्यापनं...दिया है।

२०. प्रजानां रक्षणं दानम् आदि देकर नीचे गीता के श्लोक का उल्लेख है।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्ध चाप्य पलायनम्।  
दानं ईश्वर भावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥  
(गीता अध्याय १८ श्लोक ४३)

२१. सत्यार्थ प्रकाश में गीता के श्लोकों का प्रयोग इस प्रकार है देखिये—सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ की भूमिका में ही—

“यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम्॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ३७)

यह श्लोकार्ध दिया है और इस श्लोक को लिखकर ऋषि ने इसके नीचे लिखा है कि—यह गीता का श्लोक है।

२२. एक श्लोक गीता का सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम् समुल्लास में अत्यावश्यक विषय में दिया है वह इस प्रकार है।

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।  
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता अध्याय २ श्लोक २६)

अर्थात् असत् वस्तु का कभी भाव नहीं होता और सत् पदार्थ का कभी अभाव नहीं होता है इन दोनों बातों को तत्त्वदर्शियों ने जान लिया है।

‘यत्तदग्रे विषमिव’—इस श्लोक के विषय में एक गीता विरोधी सज्जन ने लिखा कि—इससे यह तात्पर्य निकालना चाहिये कि ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश लिखने की प्रेरणा गीता से ली जो एक मिथ्या कल्पना है।

मैंने यह बात कहीं भी न कही न लिखी कि—ऋषि

ने गीता से ही सत्यार्थ प्रकाश लिखने की प्रेरणा ली। पर उनको अपने लिखे उद्धरण को पढ़ना और विचारना चाहिए था, जो उन्होंने 'ऋषि दयानन्द और गीता' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४ पर सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में से दिया है—

यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि—'यत्तदग्रे विषमिव परिणामे अमृतोपमम्' (यह गीता का वचन है) इसका अभिप्राय यह है कि—जो जो विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को लिखा है।

इस श्लोक के विषय में उन्होंने यह भी लिखा है—

यह गीता की ही एकमात्र धरोहर नहीं है। उनका और किसी का भी यह कहना कि—यह गीता की एकमात्र धरोहर नहीं है सर्वथा असम्बन्ध और अप्रासंगिक है क्योंकि—यह प्रश्न ही नहीं है कि—कौन बात किसकी धरोहर है प्रश्न तो यह है कि गीता के वचनों को ऋषि ने लिखा है या नहीं?

'नासतो विद्यते भावो.....' इस श्लोक पर भी आपने ऐसी ही अनावश्यक बात लिखी है कि—इस पर

गीता का एकाधिकार नहीं, प्रश्न यहाँ यह नहीं है कि—इन बातों पर एकाधिकार गीता का है कि नहीं या यह एकमात्र गीता की धरोहर है कि—नहीं? प्रश्न यहाँ केवल यह है कि—ऋषि दयानन्द जी गीता के श्लोकों का प्रयोग प्रमाण रूप में करते थे कि—नहीं? तो स्पष्ट है कि गीता के वचनों का प्रमाण रूप से प्रयोग वह करते थे, इसके २२ प्रमाण यहाँ तक दिये जा चुके हैं आगे और भी देखिये—

२३. सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में—

ऋषि ने संस्कार विधि की भांति ही ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव बताने के लिए—मनुस्मृति और गीता के—

अध्यापन मध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चेव ब्राह्मणाना मकल्पयत्॥

(मनुस्मृति अध्याय ४१ श्लोक ८८)

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं, ब्राह्म कर्म स्वभावजम्॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ४२)

दोनों के श्लोक इकट्ठे लिए और क्षत्रिय वं. गुण कर्म बताने के लिए भी मनुस्मृति और गीता के श्लोक

इकट्ठे लिखे यथा—

२४. प्रजानां रक्षणं दानं मिज्याध्ययन नेव च।  
विषयेष्व नासक्तिश्च क्षत्रियस्य समासत॥  
( मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ८९ )

शौर्य तेजो धृतिदीक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।  
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥  
( गीता अध्याय १८ श्लोक ४३ )

दोनों के श्लोकों को मिलाकर लिखा और दोनों को एक-दूसरे के पूरक समझ कर दोनों श्लोकों को मिलाकर ही अर्थ लिखा इससे स्पष्ट है कि—ऋषि ने यहाँ दोनों के श्लोकों को समान रूप से आवश्यक तथा समान रूप से प्रमाण माना और प्रकट किया है।

ऋषि की ऋषिदृष्टि या आर्ष दृष्टि थी जो यथार्थ देखती थी और इन असम्पन्न्यों की अनार्ष दृष्टियाँ हैं। दुख की बात है कि—ये लोग न केवल अपने आपको आर्य समाज के सब पण्डितों से बड़ा पण्डित, सबसे बड़ा बुद्धिमान तथा सबसे बड़ा सिद्धान्तवादी जताते हैं प्रत्युत ऋषि दयानन्द जी से भी बड़ा विद्वान और विचारशील मानते और अपने लेखों से ऐसा ही प्रकट करते हैं।

आप पहले भी पढ़ चुके हैं कि मिर्जापुर के वैरागी महन्त बालकृष्ण दास को उसके यह मानने पर कि—'गीता प्रक्षिप्त है' ऋषि ने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और बलपूर्वक कहा कि—गीता कोई प्रक्षिप्त नहीं है और ये पण्डितम्पन्न्य कि जो सम्पूर्ण गीता को प्रक्षिप्त मानते हैं।

जब महन्त बालकृष्ण दास का साहस ऋषि के साथ शास्त्रार्थ करने का नहीं हुआ था तब ये लोग होते तो ये लोग ऋषि को परास्त करने का शायद दुस्साहस करते।

बड़ा भारी आश्चर्य है कि ऋषि की मान्यता के विरुद्ध ये लोग लिखते और कहते हैं और आर्य समाज से सारे विद्वानों से अपने आपको ऋषि का भक्त और बहुत बड़े अनुयायी प्रकट करते हैं।

ऋषि दयानन्द जी के पीछे—उसके शिष्य पण्डित भीमसेन जी पण्डित भूमित्र शर्मा जी, सामवेद भाष्यकार—पण्डित तुलसीराम जी स्वामी, सिद्धान्त मूर्ति, तार्किक शिरोमणि, स्वामी दर्शनानन्द जी, ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, दर्शनों और उपनिषदों के भाष्यकार महामहोपाध्याय पण्डित आर्य मुनि जी, अनेक ग्रन्थों के टीकाकार पण्डित राजाराम जी शास्त्री, आचार्य पण्डित मुक्तिराम जी उपाध्याय ( स्वामी आत्मानन्द जी ), आचार्य नरदेव

जी शास्त्री वेदतीर्थ, विद्याभास्कर पण्डित, रामावतार जी शास्त्री, वेदतीर्थ, विद्या भास्कर पण्डित रामावतार जी शास्त्री, अनेक दर्शनों के भाष्यकार पण्डित उदयवीर जी शास्त्री सांख्य वेदान्तादि तीर्थ, शास्त्रार्थ महारथी पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द जी), वेदभास्कर पण्डित सातवलेकर जी, शास्त्रार्थ महारथी पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी शास्त्रार्थ महारथी, पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ, पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार (पूर्व उपकुलपति विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी), त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी, देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी, तपोमूर्ति पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, रिसर्चस्कालर पण्डित भगवद्दत्त जी, पण्डित रामावतार जी पंचतीर्थ, आचार्य पण्डित रामानन्द जी शास्त्री, महापण्डित पण्डित रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य, पण्डित कृष्ण चन्द जी विद्यालंकार वर्तमान संसद सदस्य पण्डित शिवकुमार जी शास्त्री, प्रसिद्ध गवेषक पण्डित शिवपूजन सिंह जी एम०ए०, पण्डित रामस्वरूप जी शास्त्री काव्यतीर्थ, कविरत्न पण्डित हरिशंकर जी पद्मभूषण, आदि-आदि सिद्धान्तवादी और महविद्वान् गीता के भाष्यकार और प्रशंसक रहे हैं।

एक गीता विरोधी सज्जन की अनूठी कल्पना—

सत्यार्थ प्रकाश में—ब्राह्मण के लक्षणों में—शमोदमः आदि और क्षत्रिय के लक्षणों में—शौर्य तेजो० आदि श्लोकों के प्रयोग पर 'ऋषि दयानन्द और गीता' नामक पुस्तक के पृष्ठ १५ पर लिखा की इन वेद पठन, यज्ञ-भाग और दान, १ तीनों कर्मों के प्रति उपेक्षा स्पष्ट है जिसकी पूर्ति के लिए ऋषि ने मनु के उपर्युक्त श्लोक को देना आवश्यक समझा इससे ऋषि की दृष्टि में गीता का कोई मान न होकर उसकी हेयता और वर्णधर्म की त्रुटिपूर्ण व्याख्या ही प्रकट होती है।

श्रीमान् जी की यह कल्पना सर्वथा उलटी है उनके लेख का भाव ऐसा निकलता है कि—मानो ऋषि किसी कारण के आग्रह आदि से गीता के इन श्लोकों का अर्थ लिख रहे थे, उन श्लोकों में वर्णधर्म की त्रुटिपूर्ण व्याख्या थी इसलिए मनु के श्लोकों को लिखकर वर्णधर्म की पूरी व्याख्या कर दी।

सत्यार्थ प्रकाश में सर्वथा इसके विपरीत बात है। ऋषि ने चारों वर्णों के कर्तव्य, कर्म और गुण कर्म स्वभाव बताने के लिए पहले मनुस्मृति का श्लोक दिया (यह नहीं कि—पहले गीता का श्लोक दिया और उसमें त्रुटि देखकर मनु का श्लोक दिया हो मनु का श्लोक देने के पीछे ब्राह्मण वर्ण के पूरे गुण, स्वभाव बताने के



लिए गीता का श्लोक देने की आवश्यकता समझी, तब गीता का श्लोक दिया और दोनों को मिलाकर अर्थ करते हुए लिखा कि—

“ब्राह्मण को पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना लेना, ये छः कर्म हैं आगे शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य (गीता में बताये इनको मिलाकर ऋषि ने लिखा) ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिए।

इसी प्रकार क्षत्रिय के गुण कर्म, स्वभाव बताते हुए पहले मनुस्मृति का श्लोक दिया—

प्रजानां रक्षणं दामं इज्याध्ययनमेव च।  
विषयेष्वप्रसक्तिश्च, क्षत्रियस्य समासतः॥

परन्तु क्षत्रिय के पूरे गुण कर्म, स्वभाव बताने के लिए—इसके आगे गीता का श्लोक दिया—

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।  
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

स्वामी जी महाराज ने इन दोनों (मनुस्मृति और गीता के श्लोकों) का अर्थ करते हुए लिखा है कि—न्याय से प्रजा की रक्षा, दान इज्या—अग्निहोत्र आदि का करना वा कराना, अध्ययन विषयों में न फंसना, शौर्य,

तेज धृति, दक्षता, युद्ध में न हटना तथा आवश्यकता पड़ने पर भागना भी दान और ईश्वर भाव, इसके अर्थ और व्याख्या करके ऋषि ने लिखा—

‘ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और कण हैं।’

सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि के लेख से स्पष्ट है कि—

गीता का श्लोक बिना लिखे ब्राह्मण वर्ण के पन्द्रह गुण कर्म-स्वभाव नहीं बनते हैं और ऋषि लिखते हैं कि—ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में इन पन्द्रह गुण कर्मों का होना आवश्यक है।

इसी प्रकार क्षत्रिय के गुण कर्मों में गीता का श्लोक न रखा जाये तो क्षत्रिय के गुण कर्म ग्यारह नहीं बन सकते। इससे यहाँ तो सर्व प्रकार यह सिद्ध और स्पष्ट है कि—

गीता को ऋषि ने हेय नहीं माना अपितु परमावश्यक और परम उपादेय जरूर माना है। यहाँ तो गीता की महत्ता और माननीयता सिद्ध हो रही है, गीता का शत्रु कोई बतावे कि ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव पन्द्रह जिनका होना ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में ऋषि ने आवश्यक बताया है वे गीता के श्लोकों के बिना पूरे किस प्रकार हो सकते हैं और क्षत्रिय के गुण कर्म स्वभाव जिनका क्षत्रिय वर्णस्थ मनुष्यों में होना आवश्यक है वह गीता

के श्लोक के बिना ग्यारह किस प्रकार होंगे? इससे सिद्ध और स्पष्ट है कि—उनकी कल्पना सर्वथा उलटी है।

एक और अनोखी और अनूठी कल्पना—

‘ऋषि दयानन्द और गीता।’ नामक पुस्तक के पृष्ठ १५ पर लिखा है कि—

“मनु के दोनों श्लोकों में वेद पठन-पाठन, यज्ञ-योग और दान तीनों का ब्राह्मण और क्षत्रियों के कर्मों में विशेष स्थान है किन्तु गीता में इनका कहीं उल्लेख तक नहीं। क्षत्रिय के दान देने का तो वर्णन है किन्तु वेदान्ययन और यज्ञ से वंचित कर दिया है। इससे गीता की इन तीनों कर्मों के प्रति उपेक्षा स्पष्ट है जिसकी पूर्ति के लिए ऋषि ने उपर्युक्त श्लोक का देना आवश्यक समझा।

इस सन्दर्भ से प्रकट होता है कि इसको लिखते समय सत्यार्थ प्रकाश का लेख सर्वथा उनके ध्यान में नहीं था या फिर जान-बूझकर अपने मिथ्या पक्ष को लोगों के सम्मुख प्रबल बनाने के लिए सर्वथा उलटी बात लिख दी है।

कोई पूछे कि गीता के श्लोक जो वर्ण धर्म की अधूरी व्याख्या करते हैं उनको ऋषि लिख ही क्यों रहे

थे। दूसरा प्रश्न यह है कि वह गीता के श्लोक क्या पहले दिये हैं और उनकी पूर्ति के लिए मनुस्मृति के श्लोक बाद में दिये हैं? यहाँ तो इसके विपरीत है अर्थात् पहले मनुस्मृति के श्लोक दिये हैं पीछे गीता के। “ऋषि दयानन्द और गीता” नामक पुस्तक का यह सारा सन्दर्भ ऋषि दयानन्द जी के अर्थों के भी विरुद्ध है और श्लोकों के शब्दों के भी विपरीत है।

शमोदमस्तपः....., आदि श्लोक के अर्थ में ऋषि ने लिखा है कि—

(ज्ञान)—सब वेदादि शास्त्रों का सांगोपांग पढ़कर पढ़ाने का सामर्थ्य विवेक-सत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसी हो अर्थात् जड़ को जड़ और चेतन को चेतन, मानना और जानना।

(विज्ञान)—पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथा योग्य उपयोग लेना (आस्तिक्य)—कभी वेद ईश्वर, मुक्ति, पूर्वापर-जन्म, धर्म विद्या माता पिता आचार्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना आदि।

ऋषि ने इस श्लोक में वेदाध्ययन का विधान माना है पर श्रीमान् जी को इसमें उसका उल्लेख तक दिखाई

नहीं देता है। इसको दृष्टिदोष कहा जाये या कुछ और?

क्षत्रिय का लक्षण बताते हुए—शौर्य तेजो धृति—दाक्ष्य आदि गीता के श्लोक में से 'दाक्ष्य' शब्द का अर्थ—

(दाक्ष्य)—राजा और प्रजा सम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना।

क्षत्रिय को वेदाध्ययन से वंचित कैसे कर दिया? वेद तो सनातन शास्त्र है वेद को बिना पढ़े सब शास्त्रों में अति चतुर होना कैसा?

यह गीता के श्लोकों का वह अर्थ हुआ जो ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा। अब श्लोकों के शब्दों पर विचार तो मनुस्मृति के श्लोक में ब्राह्मण के लिए 'अध्यापनमध्ययनम्' पाठ है। इससे वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना कौन से शब्दों का अर्थ है? इसका सीधा अर्थ तो केवल—पढ़ना पढ़ाना है।

यदि कहा जाये कि—मनुस्मृति के अन्य वचनों के आधार पर हम—'अध्ययन' का अर्थ वेद पढ़ना और 'अध्यापन' का अर्थ वेद पढ़ाना लगाते हैं तो ठीक है इसी प्रकार गीता के अन्य वचनों के आधार पर यहां अर्थ लगाने चाहिये।

गीता में कहा है—“यदक्षरं वेद विदो वदन्ति” गीता अध्याय ८ श्लोक ११ अर्थात् जिस अक्षर को वेद

के जानने वाले जानते हैं, आदि यहाँ वेद को मानने का संकेत है और—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोद के।  
तावान् सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः॥

गीता में कहा है कि—जितना प्रयोजन जलार्थी का सब ओर किनारों तक जल से छलकते भरे हुए जलाशय में है उतना सारे वेदों में ज्ञानी ब्राह्मण का है अर्थात् जलार्थी को सब आवश्यकताओं की पूर्ति जिस प्रकार पूरे भरे हुए जल के सरोवर से होती है इसी प्रकार सारे वेदों से ब्राह्मण की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति वेद से हो जाती है। इस प्रकार “वेद का पढ़ना और पढ़ना गीता के अनुसार आवश्यक सिद्ध हुआ” पर जिसकी आँखें पक्षपात ने अन्धी कर रक्खी हों उसको गीता में वेद पढ़ने का उल्लेख कभी दिखाई नहीं देगा। इस विषय में मेरी बनाई पुस्तक—'गीता और वेद' अवश्य पढ़नी चाहिये, जिसे मेरे योग्य शिष्य 'लाजपतराय अग्रवाल' ने अलग से प्रकाशित कराया है।

जो आपत्ति गीता के श्लोकों पर 'ऋषि दयानन्द और गीता' के लेखक ने उठाई थी उसका निराकरण तो ऋषि द्वारा किये गये अर्थ से हो गया। मेरा अभिप्राय तो केवल यहाँ यह दिखाने से था कि—

“ऋषि ने गीता को यहाँ हेय नहीं किन्तु परम उपादेय माना है।”

और ऋषि को उसमें वर्णधर्म की त्रुटिपूर्ण व्याख्या नहीं दिखाई दी किन्तु वर्णधर्म का पूरक व्याख्यान दिखाई दिया, इसीलिए ऋषि ने मनुस्मृति के श्लोकों के साथ गीता के श्लोकों को जोड़ना अत्यावश्यक समझा और संस्कार विधि तथा सत्यार्थ प्रकाश दोनों अनुपम ग्रन्थों में दोनों के श्लोकों को जोड़ कर ही अर्थ किया। तभी तो ब्राह्मण के गुण कर्म ६ नहीं १५ गिनाये और क्षत्रिय के गुण कर्म ५ नहीं ११ गिने। यह संख्या गीता के श्लोकों को जोड़ने से ही पूरी होती है। आश्चर्य और दुःख की बात है कि—

“इन विरोधियों ने महर्षि दयानन्द जी के लेख की उपेक्षा करके ऋषि को गीता का घोर विरोधी प्रकट करने का प्रयत्न किया है।”

(२५) सत्यार्थ प्रकाश में गीता के दो श्लोक प्रश्नकर्ताओं की ओर से देकर ऋषि ने उनका समाधान किया है यथा—

प्रश्न—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिं भवति भारत।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता अध्याय ४ श्लोक ७)

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि—जब जब धर्म का लोप होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर—यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं—और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे, कि मैं युग-युग में अधर्म का नाश करूँगा तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि ‘परोपकाराय सतां विभूतयः’। परोपकार के लिए सत पुरुषों का तन-मन-धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण जी ईश्वर नहीं हो सकते।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

ऋषि की बुद्धि गहराई तक पहुँचती है। एक यह कि यदि तुम श्रीकृष्ण को ईश्वर मानकर इस वचन को ईश्वर का वचन मानते हो तो यह बात वेद विरुद्ध है क्योंकि वेद में ईश्वर को निराकर और अजन्मा बताया है। दूसरी यह है कि—यदि इस श्लोक को श्रीकृष्ण (मनुष्य) का वचन माना जाये तो कुछ दोष नहीं क्योंकि वह जीव थे और जीव तो जन्म लेते ही हैं, भोगी जन प्रकृति के वश में होकर और योगी जन प्रकृति के वश में करके जन्म लेते हैं।

२६-दूसरा एक श्लोकार्थ नवम् समुल्लास में इस प्रकार दिया गया है—

प्रश्न—जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म-मरण रूप दुःख में कभी आते हैं या नहीं? क्योंकि—

न च पुनरावर्तते न च पुनरार्तत इति॥

(छान्दोग्यउपनिषद् प्र. ८ खं. १५)

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्॥

(शारीरिक सूत्र ४।४।३३)

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्॥

(भगवद्गीता अध्याय १५ श्लोक ६)

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि—मुक्ति वही है कि—जिससे निवृत्त होकर जीव पुनः संसार में कभी नहीं आता।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं, क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है। (इससे आगे मुक्ति से पुनरावृत्ति सिद्ध करने के लिए वेद के दो मन्त्र दिये हैं)।

यहाँ सम्मति ऋषि की छान्दोग्य उपनिषद् और वेदान्त दर्शन के विषय में होगी। वही गीता के विषय में होगी, भिन्न नहीं, क्योंकि प्रश्नकर्ता की ओर से तीनों ग्रन्थों के प्रमाण एक ही प्रश्न में दिये गये हैं और तीनों के विषय में ऋषि का एक ही उत्तर है कि—यह बात ठीक नहीं? यदि यह कहा जाये कि—ये वचन नहीं तो इसके

दो अर्थ होंगे—१ यदि यह कहा जाय कि—ये वचन उन उन ग्रन्थों के नहीं है, लगता है कि—ऐसा कहना ऋषि को अभीष्ट नहीं है क्योंकि—ये तीनों ग्रन्थ ऋषि ने पढ़े हैं और ये तीनों वचन भी ऋषि के देखे हुए हैं।

दूसरा भाव यह लिया जा सकता है कि—ये वचन उन ग्रन्थों में हैं तो अवश्य, पर तीनों के तीनों प्रक्षिप्त हैं, ऐसा कहना भी ऋषि को अभीष्ट हो यह नहीं लगता क्योंकि—ऋषि ने कहीं भी उपनिषदों और दर्शनों में प्रक्षेप नहीं बताया है, यह भी नहीं प्रतीत होता है कि—इन तीनों वचनों को ऋषि जो वेद विरुद्ध कहते हों क्योंकि—इन ग्रन्थों को ऋषि ने वेद विरुद्ध कहीं नहीं बताया है।

यदि गीता के वचन को वेद विरुद्ध बताया जाये तो ऊपर के दोनों भी वेद विरुद्ध ही हुए। ऋषि का निर्णय यह तीनों के लिये है कि—यह ठीक नहीं। यह निर्णय अकेले गीता के प्रमाण पर ही नहीं लग सकता है (ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि—ऋषि ने इन वचनों के उस अर्थ को कहा है कि—

यह बात ठीक नहीं जो अर्थ इनका प्रश्नकर्ता ने समझा है वह अर्थ ही वेद विरुद्ध है और जिस बात को प्रश्नकर्ता उस अर्थ से लेना चाहता है

उसी का ऋषि ने वेद में निषेध बताया है।

अतः स्पष्ट है कि—

यहाँ ऋषि ने गीता को अमान्य नहीं कहा है। अपितु तीनों प्रमाणों और तीनों ग्रन्थों को मान्य कोटि ही में रहने दिया है।

२७-ऋषि के पत्र और विज्ञापन में—

श्री रामलालकपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ४०४ पर मुन्शी समर्थ दान के लिए फाल्गुन शुक्ल ९ सम्बत् १९३९ विक्रमी (ऋषि के देहावसान से लगभग ८ मास पूर्व) के लिखे पत्र में ऋषि ने—

“सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते”

(गीता अध्याय २ श्लोक ३४)

यह श्लोकार्थ लिखा है, इसका अर्थ यह है कि—प्रतिष्ठा वाले मनुष्य की अकीर्ति मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक है।

२८. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४१३ पर लिखा है—

एक विज्ञापन में ऋषि ने फिर इसी श्लोकार्थ को लिखा है—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥

(गीता अध्याय २ श्लोक ३४)

२९-इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४४२ पर ऋषि का श्री राव राजा तेजसिंह जी जोधपुर को वैशाख शुक्ल १३ सोमवार सम्बत् १९४० को शाहपुरा से लिखा हुआ पत्र—

नोट :- अर्थ तीनों का इसी प्रकार है—

“न च पुनरावर्तते, अनावृत्ति शब्दान्—यद्गत्वा न निवर्तन्ते”

तीनों वचनों में एक ही ध्वनि निकलती है कि जब तक मुक्ति की अवधि है तब तक मुक्त जीव वापस नहीं आता है। ऋषि के देहावसान से लगभग साढ़े पाँच माह पहले पत्र छपा है, उसमें ऋषि ने गीता का यह श्लोक लिखा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते॥

(गीता अध्याय ३ श्लोक २१)

अर्थ—श्रेष्ठ पुरुष जिस जिस आचरण को करता है इतरजन (पीछे चलने वाला छोटा भी) उसी उसी आचरण को करता है, लोक उसी के अनुसार वर्तता है और वैसा ही व्यवहार करता है।

३०-इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४७१ पर महाराजा जोधपुर के नाम ऋषि ने एक श्लोक महाभारत का

तीन गीता के और दो श्लोक मनुस्मृति के दिये हैं—गीता के श्लोक इस प्रकार हैं—

विषयेन्द्रिय संयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।  
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसंस्भृतम्॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ३८)

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।  
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते॥

(गीता अध्याय ३ श्लोक २१)

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।  
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं, आत्म बुद्धि प्रसादजम्॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ३७)

इनका अर्थ इस प्रकार है—

१-विषय और इन्द्रियों के संयोग से जो आरम्भ में अमृत के समान प्रतीत होता है पर परिणाम में विष के तुल्य होता है वह रजोगुणी सुख कहा गया है।

२-श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है उससे छोटा भी वह काम करता है। वह श्रेष्ठ पुरुष जिसको प्रमाण करता है लोक उसके अनुसार वर्तता है।

३-जो आरम्भ में विष के तुल्य लगता है पर अन्त परिणाम में अमृत के समान होता है। वह सुख सत्वगुण

युक्त कहा गया है। वह आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता को उत्पन्न करता है वह प्रसाद को देने वाला है।

इस पत्र पर पत्र लिखने की तिथि नहीं है अनुमान किया गया है कि यह पत्र मास जुलाई सन् १९८३ ई. में लिखा गया है और ऋषि दयानन्द जी महाराज का देहावसान इसी सन् की ३० अक्टूबर को हुआ। इस प्रकार यह पत्र ऋषि की मृत्यु से लगभग चार मास पहले लिखा गया प्रतीत होता है।

इन सब उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि—ऋषि दयानन्द जी कार्य क्षेत्र में उतरने से आरम्भ करके मृत्यु पर्यन्त अपनी पुस्तकों में अपनी बातचीत में, और अपने पत्र-व्यवहार में भी गीता के श्लोकों का प्रयोग करते रहे और गीता पर उठने वाली शंकाओं का समाधान भी करते रहे, उसके अर्थों की उलझनों को सुलझाते रहे।

गीता की सरल, सरस और मनोहारिणी कथायें भी करते रहे। मृत्यु पर्यन्त गीता के श्लोकों का प्रयोग उन्होंने नहीं त्यागा। ऐसी स्थिति में यह कहना कि—“वह गीता को त्रिदोष का सन्निपात कहते थे” ऋषि के ऊपर मिथ्या दोषारोपण करना है।

### गीता शत्रुओं के तीन महा प्रमाण—

महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र प्रथम भाग पृष्ठ २०३ और २०४ पर संवत् १९२७ मार्गशीर्ष मास में जिला बुलन्दशहर के—अहार ग्राम के पास ग्राम 'चासी' में निवास करना बताया गया है वहाँ यह लिखा है कि—

कहते हैं कि—ग्रन्थों के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में उनका किन्हीं अंशों में मत परिवर्तन हो गया था भगवत् गीता को त्रिदोष का सन्निपात बतलाते थे और कहते थे कि—उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादन किया गया है और कहीं उनका पृथक्त्व देखने में आता है और कहीं प्रकृति और पुरुष पृथक्त्व माना गया है। प्रचलित मनुस्मृति को वह मनु संहिता नहीं मानते थे और उसे 'भृगुसंहिता' कहते थे।

यह लेख देवेन्द्र जी मुखोपाध्याय का है वहाँ यह नहीं बताया कि—ऋषि ने यह किसको कहा था कि—गीता त्रिदोष का सन्निपात है। तथा देवेन्द्र नाथ जी को यह बात किसने बतायी? "गीता और मनुस्मृति सम्बन्धी दोनों बातें सर्वथा असत्य और मन घटन्त है।" संवत् १९२७ में मनुस्मृति को मनुसंहिता नहीं भृगु संहिता बता रहे हैं और संवत् १९३२ में (५ वर्ष पीछे) संस्कार विधि लिखते हैं जिसमें पौने दो सौ के लगभग

श्लोक मनुस्मृति के मनु के नाम से देते हैं भृगुसंहिता के नाम से नहीं।

संवत् १९३९ विक्रमी में सत्यार्थ प्रकाश को संस्कार विधि से पूरे १२ वर्ष पीछे लिखते हैं और उसमें पाँच सौ के लगभग श्लोक मनुस्मृति से लेकर मनु के ही नाम से दिये हैं वहाँ भी भृगु संहिता के नाम से नहीं दिये। यहीं तक नहीं सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के आरम्भ ही में मनुस्मृति का यह श्लोक लिखा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवा॥

(मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २०)

इसका अर्थ यह है कि—पृथ्वी में रहने वाले सब मनुष्य इस आर्यावर्तीय देश के रहने वाले इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों के पास आकर अपने-अपने कर्तव्य कर्मों को सीखें।

इस श्लोक को लिखकर इसके नीचे ऋषि ने लिखा है कि—यह मनुस्मृति जो सृष्टि के आदि में हुई है उसका प्रमाण है।

कोई भी गीता का शत्रु यह कभी सिद्ध नहीं कर सकेगा कि—“ऋषि ने मनुस्मृति को कभी भी भृगु संहिता माना था।”



मनुस्मृति और गीता के विषय में मान्यता को घोषणा ऋषि ने अपने किसी भाषण में की या किसी व्यक्ति को ऐसा बताया यह कुछ पता नहीं लगता है। यह भी विचारणीय है कि—“चासी ग्राम क्या ‘काशी’ था? जो वहीं यह मान्यता प्रकट हुई।”

‘गीता त्रिदोष का सन्निपात है’? यह वाक्य भी ऋषि का प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि—त्रिदोष और सन्निपात दोनों पर्यायवाची शब्द हैं त्रिदोष ही सन्निपात है और सन्निपात ही त्रिदोष है। ऋषि दयानन्द जी ने आयुर्वेद के ग्रन्थों का भी पूर्ण रूपेण अध्ययन किया हुआ था वह ऐसे वाक्य का प्रयोग कैसे कर सकते थे। ‘पानी का जल या जल का पानी’ कहना युक्त नहीं है इसी प्रकार ‘त्रिदोष का सन्निपात’ कहना भी अयुक्त है इसीलिए यह ऋषि का वाक्य नहीं किसी और का ही मनमाना अशिक्षित व्यक्ति का ही बनाया हुआ है।

जैसे मनुस्मृति को भृंगु संहिता—मानने की बात मिथ्या है ऐसे ही गीता को ‘त्रिदोष का सन्निपात’ मानने की बात भी मिथ्या है।

यहाँ एक और स्मरण करा देना उचित समझता हूँ कि पीछे संख्या (१३) में पढ़िये वहाँ ऋषि के काशी

निवास की बात सम्वत् १९३७ विक्रमी की लिखी है जो ऋषि के देहावसान से केवल तीन वर्ष पहले की और ‘चासी’ ग्राम में गीता को ‘त्रिदोष का सन्निपात’ बताने वाली बात से १० वर्ष पीछे की है क्योंकि—चासी ग्राम की बात सम्वत् १९२७ विक्रमी की बताई गई है और यह संवत् १९३७ की। वहाँ गीता पर की गई एक शंका का अत्युत्तम समाधान किया जिससे ऋषि की विद्या और बुद्धि का श्रोताओं पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार मैं समस्त गीता विरोधियों से पूछता हूँ कि—

जब इस शंका से १० वर्ष पूर्व ऋषि ने घोषणा कर दी थी कि—गीता त्रिदोष का सन्निपात है तो वहाँ १० वर्ष पूर्व पीछे उस पर होने वाली शंका का समाधान क्यों किया? ऋषि ने वही यहाँ भी क्यों न कह दिया कि १—गीता त्रिदोष का सन्निपात है?

क्या चासी में इसलिये घोषणा की थी कि—

यह अनपढ़ ग्रामीणों की अज्ञानी चासी है और यहाँ इसलिये यह न कहकर समाधान किया कि—यह विद्वानी काशी है? अतः स्पष्ट है कि—चासी वाली बात सर्वथा मिथ्या है।

(२) गीता विरोधियों का दूसरा महा प्रमाण है

कि—

बनेड़ा के राजा साहिब द्वारा गीता के श्लोक बोलकर प्रश्न करने पर ऋषि ने उनको कहा कि—हम गीता का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं आपके यहां वेद की—खूब चर्चा है आप वेद का प्रमाण दीजिए!

भाइयो! यदि यह बात—ऐसी की ऐसी ही सत्य भी हो तो भी यहाँ से गीता का स्पष्ट विरोध या निषेध प्रकट नहीं होता है। यदि हमारे सम्मुख कोई व्यक्ति—मनुस्मृति का प्रमाण देकर मांस भक्षण या मृतक श्राद्ध सिद्ध करना चाहे तो हम उसको यह कह सकते हैं कि वेद का प्रमाण दीजिए। हम वेद के सामने मनुस्मृति का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। वेद स्वतः प्रमाण है वेद के सामने गीता क्या और मनुस्मृति आदि कोई भी शास्त्र क्या मायने रखता है?

और जहाँ वेद की अधिक चर्चा हो वहाँ वेद ही का प्रमाण दिया जाना चाहिये। पर मुझको बनेड़ा वाली यह बात भी बनावटी ही प्रतीत होती है। मेरा ऐसा विचार क्यों है? इस पर आगे पढ़िये?

यह गीता के प्रामाण्य स्वीकार न करने वाली बात—श्री देवेन्द्र नाथ जी के लिखे जीवन चरित्र से ली गई है श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखे ग्रन्थ दयानन्द

प्रकाश में बनेड़ा का वृत्त इस प्रकार लिखा है—

महाराज ने भी राजा महाशय को कुशल मंगल और योग क्षेम पूछा और कहा कि—आप कोई प्रश्न पूछिये उन्होंने जीव ब्रह्म के विषय में प्रश्न किया। जिसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि—

जीवात्मा से ब्रह्म न्यारा है, स्वामी जी ने समझाया कि जैसे आकाश सारे मन्दिर के भीतर फिर बाहर परिपूर्ण है परन्तु मन्दिर आकाश से भिन्न ही बना रहता है ऐसे ही परमात्मा जीवात्मा में रमा हुआ है परन्तु जीव उससे न्यारे ही रहते हैं।

इससे आगे राज पण्डित से महीधर भाष्य पर वार्तालाप की चर्चा है और इससे आगे चक्रांकितों के खण्डन की चर्चा है गीता के प्रामाण्य स्वीकार न करने की कुछ भी चर्चा नहीं है।

देवेन्द्र नाथ जी वाले जीवन चरित्र के जिस प्रमाण को गीता के शत्रुओं ने वेद के प्रमाण के समान स्वतः प्रमाण माना हुआ है, गीता का प्रामाण्य स्वीकार न करने की आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि वहाँ बनेड़ा के राजा साहिब की ओर से गीता के जो दो श्लोक बोले हुए बताये हैं वह दोनों श्लोक ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों को पृथक बताने वाले हैं जो ऋषि के

अपने पक्ष में पड़ते हैं, जीव ब्रह्म की एकता मानने वालों के पक्ष में नहीं। उनके मत के तो वह दोनों श्लोक सर्वथा विरुद्ध है। न तो राजा जी की ओर से वह बोले जा सकते थे और ना ही ऋषि की ओर से उनके अस्वीकार करने की बात हो सकती थी यहाँ गीता के अप्रामाण्य की आवश्यकता ही नहीं थी।

गीता के जिन श्लोकों में वेद विरुद्ध होने की आशंका थी उन पर ऋषि ने लोगों का समाधान करके उनको वेदानुकूल सिद्ध किया ऐसा कई स्थानों पर आ चुका है और जो श्लोक वेदों और ऋषि दयानन्द जी के सिद्धान्तों के अनुकूल थे उन पर 'हम गीता को प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं' यह वाक्य बनाकर ऋषि के मत्थे मढ़ा गया है। स्पष्ट ही है कि—यह वाक्य गीता के विरोधी या ऋषि के विरोधियों का अपना बनाया हुआ है।

उन दोनों श्लोकों में है—

द्वाद्विमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।  
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥

उत्तम पुरुषस्त्वन्यः, परमात्मेत्युदाहृतः।  
स लोक त्रयमाविश्व, विभक्त्यव्यय ईश्वरः॥

(गीता अध्याय १६ श्लोक १६-१७)

अर्थ—इस लोक में दो पुरुष क्षर और अक्षर हैं। भूत अर्थात् पंच तत्त्वाक्षर अर्थात् परिवर्तित होने वाले हैं और जीवात्मा अक्षर अर्थात् अपरिवर्तित और विनाश रहित हैं।

उत्तम पुरुष इन दोनों से भिन्न है और वह 'परमात्मा' कहा गया है। तीनों लोकों में प्रविष्ट हुआ-हुआ वह परमेश्वर सब का भर्ता और पोषण करता है।

इन श्लोकों में—ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को पृथक-पृथक बताया गया है पर देवेन्द्र नाथ जी वाले जीवन चरित्र से प्रकट है कि राजा जी का पक्ष जीव ब्रह्म की एकता का था। विचारशील सज्जन निर्णय करें कि—ये दोनों श्लोक वनेड़ा के राजा जी जीव और ब्रह्म को एक मानकर प्रश्न कर रहे थे वह इन श्लोकों को क्यों कहते? और यदि वह राजा जी इसका ऐसा यथार्थ अर्थ न समझकर और भूल से इन श्लोकों को (जो उनके ही पक्ष के विरुद्ध थे) बोल बैठे हों तो ऋषि इनको सुनते ही यह कहते कि—

राजन्! यह दोनों श्लोक ही आपके प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यहाँ ऋषि को यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि हम इनको या सारी गीता का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। स्पष्ट है कि—यह बेतुकी बात किसी ने

वैसे ही बिना समझे बना डाली। आश्चर्य यह है कि—देवेन्द्र नाथ जी इन श्लोकों का अर्थ नहीं जानते हों तो श्री घासीराम जी एम.ए. ने भी 'मक्षिका स्थानों' रख कर इस बात को बिना सोचे-विचारे लिख दिया।

यह तो बहुत ही सीधी बात है कि—यदि राजा जो अद्वैतवाद के पक्ष में गीता का कोई प्रमाण देते ( यद्यपि गीता में अद्वैतवाद का पोषक कोई प्रमाण है नहीं ) तो ऋषि का यह कहना बनता कि—यह वेद विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं है।

पर यह दोनों ही बातें समझ में आने योग्य नहीं हैं कि—जीव ब्रह्म की एकता मानकर प्रश्न करने वाले राजा जी अपने विरुद्ध स्वयं ही प्रमाण हैं और दूसरी यह कि—ऋषि अपने ही पक्ष में दिये प्रमाण पर उसकी प्रामाण्यता स्वीकार करने से न इन्कार कर दें।

गीता विरोधियों को तो सोचने समझने की आवश्यकता ही नहीं है उनको तो गीता के विरुद्ध कोई वाक्य मिला और तत्काल उसको उन्होंने ग्रहण किया, चाहे उसकी वहाँ पर कोई तुक बैठती हो चाहे न बैठती हो।

( ३ ) तीसरा उनका महा प्रमाण यह है कि—  
किसी व्यक्ति ने ऋषि दयानन्द जी के सम्मुख

अवतारवाद पर गीता का श्लोक बोला कि—

यदा यदाहि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारता।  
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

( गीता अध्याय ४ श्लोक ८ )

इसको सुनते ही ऋषि ने कड़क कर कह दिया कि—'गीता कल की राण्ड है' यह वाक्य ही 'ऋषि दयानन्द' जी की शैली के विरुद्ध हैं। गीता का यह श्लोक ऋषि के सम्मुख बार-बार आया, पर ऋषि ने इस प्रकार का कठोर और अभद्र वचन न बोलकर बार-बार उसका समाधान ही किया।

रामघाट में स्वामी कृष्णानन्द जी ने अवतारवाद पर यही श्लोक बोला तो ऋषि ने उत्तर में कहा कि—

ईश्वर निराकार है वह देह धारण नहीं करता है देह धारण करना तो जीव का धर्म है।

( देखें संख्या ९ )

सत्यार्थ प्रकाश में अवतारवादियों की ओर से इसी श्लोक को रखकर ऋषि ने उत्तर दिया है जिसका भाव यह है कि—यदि इसको ईश्वर का वचन समझते हो तो यह बात वेद विरुद्ध है क्योंकि—वेद में ईश्वर को अजन्मा कहा गया है और यदि इसको श्रीकृष्ण जी का वचन माना जाये जो वास्तव में है ही तो इसमें कोई

हानि नहीं। वह तो जीव जन्म लेते ही रहते हैं। वह धर्मात्मा पुरुष थे 'परोपकाराय सतां विभूतयः' आदि (देखिये सं. २५)

ऋषि को इस श्लोक तथा अन्य श्लोकों पर भी कभी यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी कि—'गीता कल की राण्ड है'। जो राण्ड है वह राण्ड ही है, कल की क्या और बहुत वर्षों की क्या? मैं पूछता हूँ क्या कल की राण्ड अधिक बुरी और बहुत दिनों की राण्ड अच्छी होती है? ऋषि ने गीता को न राण्ड कहा न सुहागन! यह भी वैसा ही सुना सुनाया और घड़ा घड़ाया वाक्य है। यह तो किसी जीवन चरित्र में भी नहीं है।

मुझको उपदेशक बने विजयादशमी संवत् २०२८ विक्रमी को ५३ वर्ष व्यतीत हो गये ५४वां वर्ष आरम्भ हो गया। मैं जब से उपदेशक बना लगभग तभी से शास्त्रार्थ भी करता हूँ। 'यदा यदा हि.....' यह श्लोक बिना शास्त्रार्थों के भी मेरे सामने सैकड़ों बार आया है जिसका मैं यही उत्तर देता हूँ कि—

यह वचन परमेश्वर का नहीं है यह श्रीकृष्ण जी का है जो एक धर्मात्मा और योगी पुरुष थे उन्होंने अपने पुनः-पुनः जन्म लेने की बात कही है सो उन्होंने असंख्य

बार जन्म लिया हमने भी असंख्य बार जन्म लिया है सब लेते रहेंगे। भेद केवल योगी और भोगी का यह होता है कि भोगी-प्रकृति वाला पुरुष अपने स्वभाव आदि के वश में होकर कर्म करता और वश में होकर ही जन्म लेता है और योगी अपनी प्रकृति और अपने स्वभाव आदि को अपने वश में करके कर्म करता और वश में करके ही जन्म लेता है।

मैं गीता को न वेद मानता हूँ न दर्शन आदि पर यह जरूर समझता हूँ कि "गीता भी संस्कृत साहित्य में एक उत्तम ग्रन्थ है उससे हमको लाभ उठाना चाहिये।" जो व्यक्ति उससे लाभ न उठाना चाहे, न उठावे यह तो अपनी-अपनी समझ का सौदा है। कई लोग वेदों से भी लाभ नहीं उठाते, दर्शनों और उपनिषदों से लाभ नहीं उठाते और नहीं उठा सकते, उनसे मुझको कुछ कहना नहीं है। मैं तो यह कहता हूँ कि यह मिथ्या प्रचार किसी को नहीं करना चाहिये कि—"ऋषि दयानन्द जी गीता के घोर विरोधी थे।" केवल इस मिथ्या प्रचार को हटाने के लिये ही मैंने यह लेख लिखा है आशा है विचारशील सज्जन इस पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

एक सज्जन ने यह भी कहा कि—गीता चाहे कितना ही अच्छा ग्रन्थ हो हम तो उसके विरुद्ध इसलिए प्रचार

करते हैं कि हमको भय है कि कहीं गीता वेद का स्थान न ले लेवे।

मैंने इस पर भी विचार किया तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि—सनातन धर्मी कहलाने वालों में गीता ही क्या वेद से ऊँचा स्थान भागवत् पुराण ने ले लिया है और क्या कहें गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण—(राम चरित्र मानस) ने भी वेद से ऊँचा स्थान ले लिया है पर आर्य समाज में गीता—कभी वेद का स्थान ले ले यह तीन काल में भी सम्भव नहीं है। गीता वेद का स्थान ले लेगी ऐसी कल्पना करना भी अपने आपको सर्वथा बुद्धि शून्य सिद्ध करना है।

क्या गीता कभी वेद का स्थान ले सकेगी? इस पर पुनः विचार करिये—

आर्य समाज में प्रातः—‘प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं’ आदि-आदि वेद मन्त्र बोले जाते हैं स्नान के समय कई आर्य लोग—‘आपोहिष्ठा.....’ आदि मन्त्र बोलते हैं सारी सन्ध्या वेद मन्त्रों द्वारा की जाती है।

ईश्वर—स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्र वेद के ही हैं। स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण के मन्त्र वेद के ही हैं। हवन भी वेद मन्त्रों से ही किया जाता है। भोजन के समय आर्य लोग ‘अन्नपते...’ आदि मन्त्र वेद का बोलते हैं, रात्रि को सोते समय—‘यज्जाग्रतो...’ आदि छः मन्त्र

वेद के ही बोलते हैं।

उपदेशक भजनोपदेशक भी व्याख्यानों और भजनों का आरम्भ वेद मन्त्र बोलकर करते हैं। गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त सारे संस्कार वेद मन्त्रों से होते हैं।

इन सारे कार्यों में गृहसूत्रों के चाहे कुछ वाक्य भी हों पर गीता का इनसे कुछ दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

व्याख्यानों में गीता के दो चार श्लोक बोल दिये जायें या कभी कोई गीता की कथा कर देवे तो इतने से ही गीता वेद का स्थान ले लेगी? कथा तो उपनिषदों की भी होती है सत्यार्थ प्रकाश की भी कथा होती है तो क्या सत्यार्थ प्रकाश वेद का स्थान ले लेगा? यदि यह भय है तब तो किसी ग्रन्थ की भी कथा कभी नहीं होनी चाहिए।

मैं तो कहता हूँ कि—कथा रामायण और महाभारत की भी होनी चाहिये इनकी कथा नहीं होगी तो लोग इतिहासों को सर्वथा भूल जायेंगे।

वेद का स्थान संसार का कोई भी ग्रन्थ आर्य समाज में तो ले नहीं सकता हाँ! संसार के और मूर्खों को कौन रोक सकता है? मेरी ‘गीता और वेद’ पुस्तक भी अवश्य पढ़नी चाहिये उससे गीता और वेद के सम्बन्ध का ज्ञान होगा। तीन बार छप-छपकर समाप्त हो गई। शीघ्र ही आगे भी छपेगी॥

समाप्त!!

## परिशिष्ट

भागवत खण्डनम् नाम की पुस्तक महर्षि दयानन्द जी महाराज की लिखी हुई—'रामलाल कपूर ट्रस्ट' बहालगढ़ सोनीपत (हरियाणा) से प्रकाशित हुई है। महर्षि का लेख केवल सात पृष्ठों का है। (श्री पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक की व्याख्या सहित कुल २० पृष्ठों की पुस्तक है) उसमें ८ बार गीता के श्लोक प्रमाण रूप में दिये हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) भागवत खण्डनम् पृष्ठ ५—

॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥

(वर्तमानो वपस्यादि, एतत् एतदकारणम्)

(स्कन्ध ९ अध्याय ६ श्लोक ५)

अर्थ—नारद जी कहते हैं—मुझे ज्ञान देने वाले साधू जब चले गये तब वर्तमान अवस्था में मैंने यह किया, आदि-आदि॥

इस पर गीता का प्रमाण ऋषि ने यह दिया है—

प्राप्त पुण्य कृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीःसमः।

शुचीनां श्रीमतांलोके योग भ्रष्टोऽभिजायते॥

(गीता अध्याय ६ श्लोक ४१)

अर्थ—योगभ्रष्ट पुरुष-पुण्यवानों के लोकों—अर्थात् स्वर्गादिक सुखयुक्त लोकों को प्राप्त होकर (उनमें) बहुत वर्षों तक वास करके शुद्ध आचरण वाले धनवान् पुरुषों के घरों में जन्म लेता है। गीता का यह प्रमाण देकर ऋषि ने लिखा है कि—

इत्युदाहरण 'विप्रसित, इत्यशुद्धमेव' इस उदाहरण से 'विप्रसित' यह अशुद्ध ही है। यहाँ एक उदाहरण रूप में कहीं का पाठ—'संवत्सरोषितोभिक्षुः' यह भी दिया है।

(२) भागवत खण्डनम् पृष्ठ ५

विस्तरेणमनो योगं विभूतिं च जनार्दन।

भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मे मतम्॥

(गीता अध्याय १० श्लोक १८)

अर्जुन ने कहा है कि—हे श्रीकृष्ण! अपनी योग प्रक्रिया तथा योग शक्ति को विस्तार से कहिये। मुझको उसे सुनते हुए तृप्ति नहीं हो रही है।

(३) विभूतेर्विस्तरं मया....

नान्तोऽस्ति ममदिव्यानां विभूतीनां परंतप!

एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरं मया॥

(गीता अध्याय १० श्लोक ४०)

हे अर्जुन! मेरी दिव्य-योग शक्तियों का अन्त नहीं अर्थात् वह बहुत हैं यह तो मैंने अपनी योग विभूतियों का विस्तार (तेरे लिए) संक्षेप से कहा है।

(४) नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे...

हन्त ते कथयष्यामि, दिव्याह्यात्म विभूतयः।  
प्राधान्यतः कुरु श्रेष्ठनास्त्यन्तो विस्तरस्यमे॥

(गीता अध्याय १० श्लोक १९)

हे कुरु श्रेष्ठ अर्जुन! अब मैं तेरे लिए अपनी योग की दिव्य विभूतियों को प्रधानता से (मुख्य मुख्य) कहूंगा। क्योंकि मेरी विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है।

(५) दैवो विस्तरशः प्रोक्त, आसुर पार्थ में श्रुणु।

(गीता अध्याय १६ श्लोक ६)

हे अर्जुन—द्वौ भूतसगौ लोकेऽस्मिन्, देव आसुर एवच।  
इस श्लोक में भूत प्राणियों के दो प्रकार के स्वभाव हैं। एक देवों के जैसे और दूसरे असुरों के जैसे।

दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ में श्रुणु।

देवों का स्वभाव-विस्तार से कहा गया। अब हे अर्जुन आसुर (असुरों) का स्वभाव मुझसे सुनो।

(६) भागवत खण्डनम् पृष्ठ ७

विप्राद् विषद् गुणयुतादरविन्दनाभा।  
पादारविन्दविमुखाच्छ् वपचं वरिष्ठम्॥

(भागवत अंक ७ अ. ९ श्लोक १०)

अत्र ब्राह्मण निन्दा कृता।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।  
परं भाव मजानन्तो, ममाव्यय मनुत्रमम्॥

(गीता अध्याय ७ श्लोक २४)

अस्माद् विरुद्धत्वाद् अशुद्धोऽपि।

भागवत् के श्लोक में कहा है कि—ब्राह्मण के बारह गुणों से युक्त जो ब्राह्मण हो परन्तु कमल नाभ (जिसकी नाभि में कमल है) भगवान् के चरण कमलों से विमुख है उससे श्वपच—चाण्डाल अच्छा है।

स्वामी जी महाराज कहते हैं कि—

यहाँ ब्राह्मणों की निन्दा की गई है। साथ ही उसमें वेष्णु भगवान् के नाभि और पैर बतलाये हैं और गीता के अध्याय ७ के श्लोक २४ के विरुद्ध होने से अशुद्ध



भी है जिस श्लोक में पौराणिकों के द्वारा किये अर्थ के अनुसार विष्णु के पूर्णावतार श्रीकृष्ण कहते हैं कि—मैं निराकार हूँ बुद्धिहीन मनुष्य मुझको शरीर वाला तथा साकार मानते हैं।

(७) भागवत खण्डनम् पृष्ठ १६

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते॥

तत्स्वयं योगसंसिद्धिः, कालेनात्मनि विन्दति॥

(गीता अध्याय ४ श्लोक ३८)

इति स्मृतेश्च। एवं सति—

भक्तिरेव मोक्ष दात्री, इति वेदादिभ्यो विरुद्ध

मेवः भक्त्या विमुच्येन्नरः।

यह पाठ विद्यमान है।

(अमर स्वामी)

अर्थ—ज्ञान के समान इस संसार में कुछ भी पवित्र नहीं है अर्थात् ज्ञान ही सर्वोत्तम पवित्र है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने गीता को 'स्मृति' लिखा है।

भागवत् के वचन में कहा कि—

भक्ति से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यह भागवत् का वचन गीता के विरुद्ध है।

(८) भागवत् खण्डनम् पृष्ठ २० पर पुनः गीता अध्याय ७ श्लोक २४ दिया है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं, मन्यन्ते मामबुद्धयः।

अर्थात् मैं निराकार हूँ बुद्धिहीन मनुष्य मुझको व्यक्तित्व में आया साकार देहधारी मानते हैं यह गीता का प्रमाण देकर लिखा है कि—

इति गीता वचनात् पाषाणादि 'कृत्रिम मूर्तिपूजनम् व्रथैव।' अर्थात् इस प्रकार गीता वचन से पत्थर आदि का बनावटी मूर्ति पूजन व्रथा ही है।



## अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

द्वारा

## प्रकाशित लघु साहित्य की संक्षिप्त सूची

| क्र.सं. | पुस्तक का नाम                                       | लेखक                                       | मूल्य |
|---------|---|--|-------|
| १.      | मजहब ही तो सिखाता है आपस में बैर रखना               | रिसर्चस्कॉलर-<br>राकेश कुमार आर्य, एडवोकेट | १.००  |
| २.      | मुस्लिम आतंकवाद?<br>(कारण और निवारण)                | -तदैव-                                     | ५.००  |
| ३.      | चारित्रिक उत्थान की-<br>आवश्यकता                    | डा. राजेन्द्र प्रसाद                       | १.००  |
| ४.      | ईसामसीह मुक्तिदाता नहीं था                          | डा. श्रीराम आर्य                           | १.००  |
| ५.      | ईसा और मरियम  | डा. श्रीराम आर्य                           | २.००  |
| ६.      | कुरान खुदाई किताब नहीं है                           | डा. श्रीराम आर्य                           | २.००  |
| ७.      | तुलसी और शालिग्राम                                  | डा. श्रीराम आर्य                           | ४.००  |
| ८.      | नृसिंह अवतार वध                                     | डा. श्रीराम आर्य                           | ४.००  |
| ९.      | स्वर्ग विवेचन                                       | डा. श्रीराम आर्य                           | ६.००  |
| १०.     | शिवजी के चार विलक्षण बेटे                           | डा. श्रीराम आर्य                           | ८.००  |
| ११.     | सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था                       | डा. श्रीराम आर्य                           | ८.००  |
| १२.     | भारत को हिन्दूराष्ट्र घोषित करो, वेद मुनि परिव्राजक | डा. श्रीराम आर्य                           | ५.००  |

नोट : विस्तृत जानकारी के लिए प्रकाशन से सूची पत्र मंगाये

लाजपतराय अग्रवाल

(वैदिक मिशनरी)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ.प्र.). भारत

दूरभाष : (०१२०) २७०१०६५ चलभाष : ०६६१०३३६७१५

E-mail . lraggarwal1058@gmail.com

Website: www.amarswamiprakashanvibhag.com

वेद

रामायण

महाभारत

गीता

वैदिक साहित्य pdf में प्राप्त करने के लिए  
टेलीग्राम एप्लिकेशन में वैदिक पुस्तकालय या  
@Vaidichbooks सर्च करें

